Setu --- □ --- सेतु

ISSN 2475-1359 :: UGC 47141

भ्रष्ट दफ़्तरी जीवन की अंतरतम यात्रा

(कृष्णा सोबती के उपन्यास 'यारों के यार' का पुनर्पाठ)

मनोज कुमार गुप्ता
शोधार्थी- पीएच. डी. (स्त्री अध्ययन)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

मनोज कुमार गुप्ता

फाइलों की परत-दर-परत में रचे-बसे दफ्तरी जीवन की अंतरतम अकुलाहट के जरिये व्यक्ति एवं व्यवस्था के संघर्ष का यथार्थ चित्रण 'यारों के यार' लघु-उपन्यास में मिलता है। 1968 के दौर में मर्दवादी दफ्तरी मिजाज एवं भाषाई तल्खियत को बड़ी बेबाकी और साफगोई से अपनी रचना में उतारना कृष्णा सोबती की लेखकीय तटस्थता और निर्भीकता की एक मिशाल है। सरकारी दफ्तरों की रहस्यात्मक भीतरी दुनिया की जटिलता के बीच बाबूगिरी की मसखरी लोक में प्रचलित कटु व्यंग्यात्मक जुमलों में मिल ही जाती है। जिसका बेरोक-टोक प्रयोग यहां मिलता है। उपन्यास का आरंभिक वाक्य ही पाठक को दफ्तरी माहौल में दाखिल कर देता है।

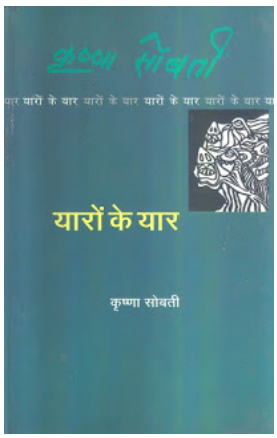

"बड़े बाबू किसी पुरानी फ़ाइल में खोये बैठे थे कि ऐन चार-चालीस पर चपरासी ने आ साहब का सलाम दिया। बड़े बाबू ने चपरासी के चेहरे से हाकिम की मिजाजी हरारत भांपने की कोशिश की, फिर हाथ का कलम कलमदान में टिकाया, रूमाल से चश्मा पोंछा और साहब के हुजूर में पेशी के लिए चल दिए। बरामदे में जरा आदतन हिचकिचाये, गला खँखारा कि साहब के चपरासी ने बन्दगी बजा चिक उठा दी।"[i]

हालांकि इनके अधिकांश उपन्यास सामंती ठसक और पितृसत्तात्मक सामाजिक ताने-बने में स्त्री जीवन एवं उसकी जटिलता, यौनिकता, औरतों की अबूझ मनोभूमि की उलझनों के इर्द-गिर्द लिखे गए हैं। 'डार से बिछुड़ी' जहां तथाकथित आदर्शवादी नैतिक परंपरा और रूढ़ियों में जकड़ी एक अल्हड़ स्त्री के फिसलकर कंटीले रस्तों पर भटक जाने की कहानी है, तो 'मित्रो मरजानी' यौनिक असंतुष्टि एवं मातृत्व सुख से पीड़ित स्त्री की दयनीयता और कुंठित मनःस्थिति की गाथा है। दुनिया भर में चल रही स्त्री देह और यौनिकता की तत्कालीन बहस के आलोक में मित्रो को रखना समीचीन हो जाता है। 'ऐ लड़की', 'समय सरगम' आदि अन्य उपन्यासों के बरक्स 'यारों के यार' में एकदम अनूठा प्रयोग है। साहबी रौब और क्लर्की बेबसी के बीच बसती एक अदद दुनिया को हूबहू अपनी रचना में उतार महिला लेखन की तमाम तथाकथित सीमा रेखाओं को तोड़कर यथार्थवादी लेखकों की अग्रिम पंक्ति में खड़ी मिलती हैं।

"हिंदी की अत्यंत विवादास्पद लेकिन अद्वितीय कथा लेखिका कृष्णा सोबती के लिए लिखना महज लिखना नहीं है, एक जिंदगी और उसकी तमाम हरकतों को पोर-पोर रचना में उतारना है। जैसे एक

हिन्दी English Poetry लेखक काव्य लघुकथा कहानी Fiction अनुराग शर्मा Anurag Sharma Review Interview समीक्षा Editorial Translation Sunil Sharma सम्पादकीय अनुवाद Excerpt Photo Feature Ghazal India@70 आत्मकथा जीवनी धरोहर साक्षात्कार चित्र Art व्यंग्य समाचार गीत पत्र सम्मान प्रतियोगिता Heritage Memoir Travelogue यात्रा Quotes Ranking feedback

Search खोज
Custom Se

Pageviews पठन
354,697

Like Share 2K people like this. Sign Up to see what your friends

Highlight विशेष

पी.सी. बरुआ और सहगल की 'देवदास'

अरविंद कुमार क्लासिक फ़िल्म "लगता है मेरा जन्म 'देवदास' लिखने के लिए हुआ था और तुम्हारा उसे परदे पर नया अर्थ देने के लिए।" – शरत् च...

मौसम से गुजरकर अलग होना और फिर दूसरे मौसम से गुजरना कुछ इस तरह का जीवंत सिलसिला कृष्णा जी के लेखन में है जो उनकी हर कृति की एक नई दिलचस्पी से प्रतीक्षा करता है।"[ii]

बड़े साहब की पेशी में हेड क्लर्क भवानी बाबू नौकरी से छुट्टी का मजमून सुन, सकते में आ गए। साहब की खुर्दबानी निगाह का असर भवानी बाबू महसूस करने लगे थे, उनके सामने न जाने कितनी फाइलें एक साथ चमक उठीं। साहब कुछ और बोलते कि टेलीफोन की घंटी ने भवानी बाबू के बेटे के बारे में बुरी खबर सुना दी। नौकरी और बेटे दोनों की नाजुक हालत बड़े बाबू को अंदर तक झकझोर रही थी उन्हें कुछ रखते-उठाते नहीं बन रहा था। साहब मौके की नजाकत पहचान औपचारिक हमदर्दी दिखाते हुए भवानी बाबू से बच्चे की देख-भाल की प्राथमिकता पर ज़ोर देते हैं। लेखिका संभवतः अफसर और मातहत के बीच एक वर्ग (क्लास) का अंतर दिखाना चाहती हैं जो संवेदनात्मक स्तर तक अपने अहम को बरकरार रखना चाहता है। भवानी बाबू घर जाने से पहले जल्दी-जल्दी कुछ काम निपटाने की कोशिश करते कि अगली घंटी ने भवानी बाबू को निस्तेज कर दिया। बेटे के मौत की सिसकी भवानी बाबू न दबा पाये, पूरे दफ्तरी माहौल में एक अजीब मनहूसियत फैल गई। सभी लोग बड़े बाबू को घर लिवा ले गए। मातमी वातावरण और खराब मनः स्थिति भवानी बाबू को जाने क्या-क्या सोंचने को मजबूर करने लगी थी। ।"जितनी बार रुमाल से आँखें पोंछते, बेटे के लहू-लुहान सिर पर किसी मनहूस फाइल का पन्ना चिपका दीखता।"[iii] बेटे के मौत का शोक और नौकरी जाने के भय के बीच अगली सुबह समय से दफ्तर... मध्यम वर्गीय जीवन की विवशता का चित्रण भी है। मुन्ने को साइकिल न दिलवा पाने की कसक और दफ़्तरी इन्क्वायरी की लपटों का डर दोनों एक साथ भवानी बाबू के दिलो-दिमाग पर अजीब कोलाहल करते नजर आ रहे हैं। बेलगाम घोड़ों की रफ्तार से दौड़ते समय और दफ्तरी माहौल के सामने बेबस बड़े बाबू की झुंझलाहट और बेचारगी को लेखिका ने इस प्रकार दिखाया है, "इस पगली को समझाओ अम्माँ, जिस बात पर इन्सान का बस नहीं, उसकी खातिर कितना दुख मनाएगी! मुझे ही देखो, इधर मुन्नन गए, उधर दफ़्तर में काम का पहाड़ टूट पड़ा। तबीयत नहीं पर क्या करूँ, छाती पर पत्थर रखे चले जाता हूँ।"[iv]

टाइपिस्ट की नौकरी से लेकर हेड क्लर्की तक के सफर की तमाम बातों की पुनरावृत्ति भवानी बाबू के मानस पटल पर हो आयी थी। ऐसे निराशाजनक आभाषी भूगोल में अपने सगे संबंधियों के रौब और ओहदों की जमीन टटोलते हुए बड़े बाबू समय से कुछ पहले ही दफ़्तर में दाखिल हो गए। रोज की तरह फाइलों के पुलिंदों के साथ साहब के कमरे में बड़े बाबू के प्रवेश करते ही सिगरेट के छल्लों के साथ बेशर्म हंसी और चुहलबाजी पूरे दफ़्तर में फैल गयी। ब्रांच में एक दूसरे की खिंचाई और कहकहों का फूहड़पन शर्मा को बरदास्त न हुई, वे बरस पड़े "बड़े भाई, ज़रा होश से, सरकारी दफ़्तर है, भाँड़-भड़वों का अड्डा नहीं। सूरी और मचल गया, अड्डा नहीं 'लुच्चई का मदरसा है' सुनें तो सही तुम्हारी पंडिताई क्या कहती है।"[v] स्त्री लेखन की तमाम तथाकथित बंदिशे यहाँ आकर मुक्त हो जाती हैं। लेखिका पूरे दफ्तरी महकमे पर अपने कथानक के माध्यम से तीखा व्यंग करती हैं। रईस कार्पोरेशनियों, समाजसेवियों की मेज़बानी वाली रंगीन महफिलों में चित्त होती नौकरशाही की पर्दानशीनी को उघाड़ कर रख देना 'यारों के यार' की शिल्पगत विशिष्टता और कृष्णा सोबती के लेखिकीय पैनेपन का साबुत उदाहरण है। सरकारी दफ्तरों की गणितबाजी की तमाम पेंचीदगियों के बाह्य यथार्थ को इस लघु-उपन्यास में परत-दर परत खोला गया है। ठेठ मर्दानी गालियों के कॉकटेल में रिश्वत, तरक्की और इन्क्वायरी के भेद और व्यवस्था में नीचे से लेकर ऊपर तक घर कर गए भ्रष्टाचार के शतरंजी पचड़ों में कमोबेश कुछ कमजोर प्यांदे अपनी आने वाली पीढ़ी को क्लर्की के चक्कर में बिलकुल नहीं फंसाना चाहते, बल्कि वो उन्हें साहबों की बिरादरी में देखना चाहते हैं। क्लर्कों की घुटन और उनके खुद के बौनेपन का एहसास माथुर के मुँह से निकल ही जाता है, "अमाँ यार छोड़ ये चर्चे, जाल पड़ते रहेंगे, माल मिलते रहेंगे, अपने हाथ क्या लगेगा... यह कलमघसीटी और यही क्लर्की का ग्रेड...।"[vi] भले ही फाइलों के समंदर में माल ही माल हो पर अपन किसी न किसी साहब के मातहती में ही फँसे हैं।

अवस्थी की तरक्की के कसीदे सुनते-सुनते थक चुके सूरी का गुस्सा फूट पड़ा "तरक्की के जुलाब से साले परशुरामियों का पेट अभी साफ़ नहीं हुआ। फफूंदी-के तरक्की आज-कल काबलियत से नहीं, मुँहचुमाई और पाँवघिसाई से मिलती है।"[vii] कलम घिसाई का काम चाहे अवस्थी के साथ करनी हो या सिन्हा के साथ कुछ खास फर्क नही पड़ता, कुर्सी बदलने से चम्मचों के लिए छोटा-मोटा जलजला जरूर आ जाता है। नए माहौल को परखने के दौर से गुजर रहे बड़े बाबू बीच में दखल करते हैं। दरअसल नए साहब के कुंडली की छान-बीन की उत्सुकता और नए बॉस के सक्त मिजाजी का कयास वस्तुतः यहां क्लर्क बिरादरी के अस्तित्वगत संघर्ष की चिंता को दर्शाता है, तो वहीं ब्रांच की स्टेनो तमाशा के बियर धुले बालों का सहलाया जाना और उनकी देह से खेलने का बिम्ब महज लेखकीय फांतासी भर नहीं बल्कि भ्रष्टाचार के शाहीपन और रईशियत के महत्त्वपूर्ण दौर की एक कड़ी की ओर इशारा है। जहाँ महिलाओं का उपयोग सतरंज की मुहरों की तरह किया जाता है। महिलाओं को अलग-अलग रूपों में अपनी तरक्की का जरिया बनाया जाना भ्रष्टाचार के इस शाही खेल का एक अहम हिस्सा

Convert This To PDF

It's Free To Convert Files. Get FromDocToPDF.

FromDocToPDF

इन्हें भी देखिये Links

- लेखकों से निवेदन
- Write for Setu
- सेतु के लेखक
- Editorial Board □ सम्पादन मण्डल
- हिंदी संस्थान व संसाधन
- Contact Setu सम्पर्क करें
- सेतु परिचय
- Setu in UGC's List यूजीसी में सेतु

प्रतीत होता है। सोशल पिकनिक के मीनू कार्ड में तन्दूरी मुर्ग, पराठे, रूमाली रोटियों और बीयर के साथ सस्ती जवान लड़कियों का शामिल होना तंत्र की अंदुरूनी सड़ांधता को प्रतिबिम्बित करता है। कार्पोरेशनियों और ओहदेदार अफसरों की जमात तमाशा, तमन्ना जैसी तमाम औरतों को इस भ्रष्ट व्यूह रचना में खींच ले आते हैं जहां से निकलना आसान नहीं होता। इस बड़े असामी के संदर्भ में शर्मा और सूरी के संवादों से बहुत कुछ साफ हो जाता है "औरतों के कोऑपरेटिव से क्या मतलब है तुम्हारा दोस्त?" "वाह भोले बादशाह, रहते किस दुनिया में हो! हर नाक-नक्शे और कद-बूट की शेयर-होल्डर जनानी का कार्ड तैयार रखता है सेठ और टेलीफोन के जरिये इज़ारबन्द-सर्विस चलाता है।"[viii] अपना उल्लू सीधा करने की फ़िराक में हाई प्रोफाइल पार्टियों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजनों की आड़ में साहबों की खिदमतदारी में कोई कसर नहीं छोड़ी जाती। खान-पान से लेकर बिस्तर के इंतजाम के साथ-साथ मेहमाननवाज़ी की रश्म अदायगी ओहदे और रुतबे के मुताबिक बंद लिफाफों की वजनई पर जाकर रुकना इसी कड़ी का हिस्सा है। ऐसे आयोजन शाही धंधे की रवायत का सहज हिस्सा बन चुके हैं। भ्रष्टाचार और रिश्वतख़ोरी के मकड़जाल में फंसे दफ़्तरी जीवन के कुछ समाजशास्त्रीय पक्ष भी उभर कर आते हैं, जिसमें बहुत हद तक भारतीय सामाजिक संरचना और व्यवस्था की जटिलता में पिसते आम जीवन की छटपटाहट एवं एक खास वर्ग के शाही जीवनचर्या की स्पष्ट झलक मिलती है।

सिन्हा की पुख्तामिजाजी से दफ़्तरी माहौल में आए बदलाव को टेलीफोन नंबरों के गूंगे हो जाने और दफ्तर को बहनोई का घर समझने वाले पेशेवर चेहरों का बरामदे से ही रफूचक्कर हो जाने के दृश्य से समझना आसान हो जाता है। लेकिन बड़े बाबू की पहली हाजिरी और नए साहब की रौबदारी के बीच वास्तव में नई सत्ता और पुरानी व्यवस्था अपना-अपना सिक्का जमाने की जुगत करती है। बहरहाल अवस्थी, चावला या सिन्हा जैसे अफसरों के बदलने से कमरे की दरी, टेलीफोन की जगह जैसे वास्तुशास्त्रीय बदलाव ही होते रहे हैं ऐसा ही कुछ इशारा लेखिका ने पात्रों के जरिये किया है। सत्ता के बदलाव की हनक व्यवस्था से सामंजस्य बना लेने तक बनाए रखना हुकूमत का चरित्र रहा है। अफ्सर, नेता-मिनिस्टर और बड़े-बड़े तथाकथित समाजसेवियों की आपसी गठजोड़ व्यवस्था के हर स्तर पर अपना सिक्का जमाये हुए है। साहबों की कलम का मिजाज और उसकी रफ्तार ही कंपनियों का इतिहास-भूगोल तय करती हैं। फाइलों के खेल में न्यू इरा एण्टप्राइज, सिस्टर-कनसर्न जैसी कितनी ही कंपनियाँ बनती-बिगड़ती हैं। नए साहब नें भी गुमसुदगी में पड़ी अपनी करीबी कंपनी 'मातादीन-बिंद्राप्रसाद' के नाम का पहला टैण्टर मंजूर कर अपनी कलम का रुख जाहिर कर दिया। पूरे तंत्र को बढ़ती कालाबाजारी, ज़लालत और भ्रष्टाचार की दीमक द्वारा खोखला किए जाने की चिंता उपन्यास में बखूबी दिखती है। एक दूसरे को निशाना बनाती क्लर्की झुंझलाहट कुछ इस प्रकार बाहर आती है, "बड़ा दूध का धुला बनता है, साले जैसे मालूम न हो कि नंगई और धोखाधड़ी इस जमाने में गुनाह नहीं- हर आदमी का निबाह है निबाह... ।"[ix] नीचे से लेकर ऊपर तक भ्रष्ट दफ्तरी गुत्थम-गुत्थ के बीच दफ्तरी माहौल को गंदे खयालातों से न बिगाड़ने की भवानी बाबू की नसीहत पर सूरी का प्रतिवाद "मेरी बातों से दफ्तर का माहौल बिगड़ता है और जो लेन-देन, ठेके-कमीशन के शाही धन्धे दफ्तर में दिन-रात चालू हैं वह तुम्हारे कहे ब्रह्मचारियों के खेल हैं ना।"[x] छद्म आदर्शवाद को अनावृत्त कर देता है। सूरी का आखिरी वाक्य बड़े हुजूम की रेल-पेल में फंसे क्लर्क बिरादरी की बेबसी, आक्रोश तथा जद्दोजहद को व्याख्यायित करता हुआ लग रहा है, "सच तो यह है हिसाब बाबू कि हममें से हरेक चूतिया है और हर एक उल्लू का पट्ठा। यूँ तो हममें भी बड़े उल्लू के पट्ठे मौजूद हैं जो हरामजदगी में उन गुरु घण्टालों के भी भाप हैं जो फोकट की चुसकियाँ खिलाकर ख़लकत के महबूब बने फिरते हैं।"[xi]

कृष्णा सोबती ने आक्रोश, तल्खियत और ऊब भरी रोज-मर्रा की दफ्तरी जिंदगी के मर्दवादी माहौल में रचे-बसे इस लघु-उपन्यास में तमाम रहस्यों को बेपर्द किया है। मर्दवादी माहौल इसलिए भी क्योंकि तमाशा जैसे महिला कर्मचारी का जिक्र उसके काम की बदौलत नहीं बल्कि उसकी यौनिकता और आकर्षण के जरिये आता है। लेखिका ने कलम की धार से शाही भ्रष्टाचार और फाइलों के आवरण को टूक-टूक कर अनावृत्त किया है। भाषिक खुलापन लेखकीय ईमानदारी और कथानक की यथार्थता का बोध कराता है। कृष्णा सोबती बीबीसी को दिये अपने एक साक्षात्कार में यह मानती हैं कि भाषिक रचनात्मकता को मात्र 'बोल्ड' की दृष्टिकोण से देखना लेखक और भाषा दोनों के साथ अन्याय होगा। कथ्य के अनुरूप पात्र का दबाव रचना में लगातार बने रहना मात्र शब्दकोशी भाषिक ताने-बाने की कसौटी पर कसे जाने से संभव नहीं होता। निकर्षतः देखा जाय तो 'यारों के यार' तत्कालीन समय और परिवेश में दफ्तरी जीवन और उसके बाह्य यथार्थ की अंतरतम यात्रा है, जो कई मौकों पर आज भी समीचीन लगता है।

संदर्भ

[i] सोबती, कृष्णा.(2000). *यारों के यार तिन पहाड़*. नई दिल्ली; राजकमल प्रकाशन. पृ.-9

[ii] छवि संग्रह-3, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय; पृ.-1

[iii] सोबती, कृष्णा.(2000). *यारों के यार तिन पहाड़*. नई दिल्ली; राजकमल प्रकाशन पृ.-15
[iv] वही, पृ.-18
[v] वही, पृ.-22
[vi] वही, पृ.-27
[vii] वही, पृ.-42
[viii] वही, पृ.-49
[ix] वही, पृ.-60
[x] वही, पृ.-61
[xi] वही, पृ.-63

अन्य-

- कृष्णा सोबती से रचना कौशिक की बात-चीत http://www.bbc.com/hindi/entertainment/story/2006/11/061117_intw_sobti.shtml (access 11/12/16)
- क़ाज़ी, डॉ. कायनात.(2016). *कृष्णा सोबती का साहित्य और समाज*. आगरा; निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यटर्स.

सेतु, सितम्बर 2017

1 comment :

Kapil Shastri October 4, 2017 at 11:28 PM
सुन्दर समीक्षा।
Reply

Enter your comment...

Comment as: Manoj Gupta (▼ Sign out

Publish Preview Notify me

We welcome your comments related to the article and the topic being discussed. We expect the comments to be courteous, and respectful of the author and other commenters. Setu reserves the right to moderate, remove or reject comments that contain foul language, insult, hatred, personal information or indicate bad intention. The views expressed in comments reflect those of the commenter, not the official views of the Setu editorial board. प्रकाशित रचना से सम्बंधित शालीन सम्वाद का स्वागत है।

Download This to PDF - View PDF
Convert doc to pdf and pdf to doc
free.fromdoctopdf.com/PDF/Converter

Start Download - View PDF
Merge & Convert Files into PDFs w/
EasyPDFCombine - Free! easypdfcombine.com

Newer Post Home Older Post

Subscribe to: Post Comments (Atom)

Popular पसंदीदा

Setu, April 2018
Setu Volume 2 Issue 11 April 2018 Editorial Sunil Sharma Poetry Louis Kastakin Chani Zwibel Mario Vitale Elizabeth Cas...